डॉ. भीमराव आंबेडकर का आर्थिक चिन्तन : दार्शनिक आधार

[1]पुष्पा इन्दोरिया

शोध सारांश

भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों यथा किसानों, श्रमिकों और वंचितों-दलितों की दयनीय सामाजिक स्थिति के अध्ययन में ड,. आंबेडकर ने आर्थिक द्वष्टिकोण का भी प्रयोग किया और यह मात्र कोई संयोग नही था अपितु इन समस्त समस्याओं के विश्लेषण के पीछे ड,. आंबेडकर का एक सुस्पष्ट और सुसंबद्ध आर्थिक दर्शन निहित है। ड,. आंबेडकर का अर्थशास्त्रीय विश्लेषण तत्कालीन अर्थव्यवस्था के गहन एवं विस्तृत अध्ययन पर आधारित था। वास्तव में ड,. आंबेडकर का मूल प्रशिक्षण एक अर्थशास्त्री के रूप में ही हुआ था। अमेरिका के प्रख्यात कोलंबिया विश्वविद्यालय तथा लंदन स्कूल अ,फ इक,नोमिक्स से उन्होंने अर्थशास्त्र में विभिन्न उपाधि प्राप्त की थी। भारतीय आर्थिक समस्याओं तथा आर्थिक प्रश्नों के संबंध में उनके विचारों की विविधरंगी और विस्तृत कार्ययोजना के सतही अध्ययन में अस्पष्टता प्रतित होती है लेकिन यर्थाथ में ड,. आंबेडकर के द्वारा दिये गये विभिन्न विचारों में एक गहरी एकसूत्रता है।

ड,. आंबेडकर के अर्थशास्त्री होने की छाप उनके द्वारा प्रत्येक क्षेत्र में किए गए कार्यों पर स्पष्ट अंकित है। स्वतंत्रता से पूर्व तथा पश्चात् समय-समय पर दिए गए विचारों तथा अनेक आयोगों के समक्ष उनके वक्तव्यों में भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं के बारे में उनकी सूक्ष्म समझ तथा गहरा ज्ञान प्रदणशत होता है। उनके ओजपूर्ण भाषण तो जैसे आर्थिक विचारों से ओत-प्रोत हैं। वे सम्भवतः पहले ऐसे विचारक थे, जिन्होंने अस्पृश्यता तथा जाति व्यवस्था जैसी सामाजिक बुराइयों के आर्थिक पहलुओं पर विस्तृत प्रकाश डाला। अन्य देशों के संविधानों की तुलना में भारतीय संविधान में आर्थिक तथा वित्तीय प्रावधानों के बाहुल्य का श्रेय भी ड,. आंबेडकर के प्रभाव को ही जाता है लेकिन ड,. आंबेडकर के अर्थशास्त्रीय अवदान की उपेक्षा कर भारतीय जनमानस ने एक महान भारतीय अर्थशास्त्री को खो दिया। आर्थिक जगत में ड,. भीमराव आंबेडकर के योगदान को हमेशा कमतर आँका गया है।

मूल शब्द

अर्थव्यवस्था, आर्थिक दर्शन, आर्थिक चिन्तन, आर्थिक द्वष्टिकोण, अर्थशास्त्रीय विश्लेषण, आर्थिक समस्या तथा आर्थिक प्रश्न

---

[1]सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान विभाग, गौरी देवी राजकीय कन्या महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान

प्रस्तावना

ड,. भीमराव आंबेडकर मात्र दलित-शोषित वर्ग के ही प्रतिनिधि नहल्ल थे वरन् एक राष्ट्रीय नेता थे। एक राजनेता, प्रशासक, न्यायविद, नीति-निर्माता के साथ-साथ सच्चे चिन्तक और विश्लेषक थे। लेखक-चिन्तक के रूप में उनका योगदान केवल विधि और राजनीति के क्षेत्र में ही नही रहा अपितु समाजशास्त्र, मानवविज्ञान, शिक्षा, पत्रकारिता, तुलनात्मक धर्म और अर्थशास्त्र के

क्षेत्र में भी उनका उल्लेखनीय योगदान रहा। ड,. आंबेडकर सच्चे अर्थो में भारत में पीडित मानवता के उद्धारक, मानवाधिकारों के प्रबल सर्मथक और सामाजिक न्याय के प्रवर्तक प्रवक्ता थे।

भारतीय आर्थिक समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने तथा भारतीय अर्थशास्त्रीय विचार को विकसित करने में ड,. आंबेडकर का महत्वपूर्ण योगदान रहा है लेकिन उनके आणथक विचारों की अनदेखी कर भारतीय समाज ने स्वयं पर अन्याय किया है। भारतीय अर्थव्यवस्था में ड,. आंबेडकर का योगदान अत्यन्त वैविध्यपूर्ण है। सतही रूप में उनके इस कार्य में एकसूत्रता का अभाव प्रतित होता है लेकिन आन्तरिक रूप से उनमें गहरी एकसूत्रता हैं। एक ओर ''ईस्ट इंडिया कंपनी : प्रशासन तथा अर्थ प्रबंध'', "ब्रिटिश भारत में प्रादेशिक वित्त का विकास" जैसे उनके विद्वतापूर्ण शोधकार्य सार्वजनिक वित्त के अंतर्गत आते हैं तो दूसरी ओर 'रुपए की समस्या : उद्गम तथा समाधान' यह मौलिक कार्य मौद्रिक अर्थशास्त्र तथा अंतरराष्ट्रीय अर्थशास्त्र शाखाओं के अंतर्गत आते हैं। 'खोती प्रणाली' और 'महार वतन' के निर्मूलन के संबंध में ड,. आंबेडकर द्वारा किया महत्त्वपूर्ण कार्य उन्हें एक सक्रिय ंषि अर्थशास्त्री के रूप में प्रस्तुत करता है तो मजदूरों के लिए उनके द्वारा किया गया संघर्ष उन्हें एक मजदूर नेता की भूमिका में प्रतिष्ठित करता है। जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के आर्थिक पहलू पर प्रकाश डालकर उन्होंने अर्थशास्त्र और समाजशास्त्र के संबंधों को स्पष्ट किया है। इससे वे एक महान मनीषी के रूप में उभरते हैं। भारतीय आर्थिक विकास में अपनी योजनाओं के द्वारा वे एक उच्च कोटि के अर्थविद् माने जा सकते हैं।[1]

डॉ. नरेन्द्र जाधव के अनुसार ड,. बाबासाहब आंबेडकर भारतीय संविधान के मुख्य शिल्पकार के रूप में विश्व विख्यात हैं, परंतु उनकी विद्वत्ता केवल विधिशास्त्र तक सीमित नहल थी। उनकी प्रतिभा वास्तव में बहुमुखी थी। विधिशास्त्र के अतिरिक्त वे समाज-विज्ञान, राजनीति शास्त्र, मानवशास्त्र तथा तुलनात्मक धर्मशास्त्र के भी प्रकांड पंडित थे। इन विविध क्षेत्रों में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। साथ ही साथ उन्हें एक महान् समाज सुधारक, मानव अधिकारों के संरक्षक, भारतीय पद्दलितों के उद्धारकर्ता, शिक्षा विशारद, सांसद तथा पत्रकार के रूप में भी ख्याति प्राप्त है, लेकिन दुर्भाग्य से इस बहुविध व्यक्तित्व का एक अंग अल्पज्ञात रह गया है, जो है उनके द्वारा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में किया गया अभूतपूर्व कार्य।[2]

आणथक जगत में ड,. भीमराव आंबेडकर के योगदान को हमेशा कमतर आँका गया है। आमतौर पर जन-जन में उनकी छवि संविधान निर्माता और युगांतरकारी नेता के रूप में ही प्रमुखता से रही है। अर्थ जगत में ड,. आंबेडकर के योगदान की चर्चा कम ही होती है। डॉ. आंबेडकर ने विधिवेत्ता, अर्थशास्त्री, शिक्षाविद, ऋचतक, धर्मशास्त्र, पत्रकार, लेखक, सामाजिक कार्यकर्ता आदि अनेक रूपों में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आज़ादी के बाद अगर उन्हें समय मिलता तो निश्चित ही अर्थशास्त्री के रूप में उनकी सेवाओं का लाभ दुनिया ले पाती। भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना में ड,. आंबेडकर का योगदान महत्वपूर्ण है।[3] रिज़र्व बैंक की अभिकल्पना, रूपरेखा, कार्यशैली और नियम -उपनियम सभी कुछ बाबा साहब आंबेडकर के शोध 'प्र,ब्लम अ,फ़ रुपी' पर आधारित है।[4]

अर्थशास्त्री के रूप में ड,. आंबेडकर के योगदान की अधिकांशतः विद्वानों द्वारा उपेक्षा की गई हैं। प्रायः लोग उन्हें संविधान निर्माता के रूप में जानते हैं। यह भी जानते हैं कि दलितों के उद्धार के लिए उन्होंने संघर्ष किया एवं उसके लिए अनेक समकालीन नेताओं की आलोचनाएं सही। वे अपने समय के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मगर विवादित नेताओं में रहे। उनकी विद्वता विरोधियों को पस्त करने वाली थी। वस्तुतः राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्र में उनका योगदान इतना महान एवं युगांतरकारी है कि उनके जीवन के बाकी पहलुओं तक लोगों की द्वष्टि पंहुच ही नही पाती। यहां तक कि दलित विद्वानों का लेखन भी उनके सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों में योगदान तक सिमटा रहा है। अर्थशास्त्री के रूप में आंबेडकर के योगदान को केवल एक लेख या लेखांश से आंकना असंभव है। अपने एक व्याख्यान में प्रख्यात अर्थशास्त्री श्रीनिवास अंबीराजन ने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में राजनीति और कानून के क्षेत्र में अंतरण को अर्थशास्त्र की भारी क्षति बताया था। उनके अनुसार अगर वे राजनीति और समाज सुधार के क्षेत्र में नही जाते तो दुनिया भर में दिग्गज अर्थशास्त्री के रूप में स्थान पाते। इस बात में काफी सच्चाई भी है। 1947

आते-आते राजनीतिक क्षेत्र में उनकी व्यस्तता काफी बढ़ चुकी थी लेकिन उन दिनों भी उनका मन अर्थशास्त्र के क्षेत्र में छूटे हुए काम को आगे बढ़ाने का था। उसी वर्ष 'प्र,ब्लम अ,फ रूपी' के संशोधित संस्करण की भूमिका में उन्होंने अर्थशास्त्र के क्षेत्र में 1923 के बाद हुए बदलावों को लेकर पुस्तक का दूसरा खण्ड तैयार करने का आश्वासन दिया था, मगर आजादी के बाद राजनीतिक जिम्मेदारिया बढ़ने के कारण से वे छूटे हुए कार्य को पूरा नही कर सके।[5]

ड,. आंबेडकर का अर्थशास्त्रीय प्रशिक्षण

ड,. आंबेडकर मूलतः अर्थशास्त्री थे। उनके अध्ययन, अध्यापन और लेखन की शुरूआत अर्थशास्त्र से हुई। उनका मानना था कि यदि परिस्थितिवश उन्हें सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में कार्य करने को विवश नही होना पड़ता तो वे अर्थशास्त्र का शिक्षक बने रहना पसन्द करते।

ड,. आंबेडकर का मूल प्रशिक्षण एक अर्थशास्त्री के रूप में ही हुआ था। डॉ. आंबेडकर ने अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में 1913 में स्नातकोत्तर कक्षा में प्रवेश लिया। अध्ययन के दौरान उन्होंने "एनसेन्ट इण्डियन कामर्स" शीर्षक पर शोध प्रबन्ध लिखा, जिस पर विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें 1915 में मास्टर आफ साइन्स की उपाधि प्रदान की गई। तदुपरान्त उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में ही पीएच. डी. उपाधि के लिए शोध कार्य आरंभ किया। उनके शोध प्रबंध 'नेशनल डिविडेण्ड फार इण्डियाः अ हिस्टारिकल एण्ड एनालिटिकल स्टडी' पर विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें सन् 1917 में पीएच. डी. की उपाधि प्रदान की गई। उक्त शोध प्रबंध को उन्होंने आगे चल कर संशोधित किया। संशोधित शोध प्रबंध सन् 1925 में पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। पुस्तक का शीर्षक था 'द इवोल्यूशन आफ प्रोविन्सिएल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया'। इस पुस्तक में ड,. आंबेडकर ने सन् 1833 से ब्रिटिश शासन काल के दौरान भारत में वित्तीय प्रबंध के विकास को समझाने का प्रयास किया। इसी दौरान वे लन्दन स्कूल आफ इकोनामिक्स एण्ड पोलिटिकल साइन्स में प्रवेश लेकर वहाँ करीब एक वर्ष तक अध्ययन करने के बाद वे स्वदेश लौट आये। लगभग तीन वर्षों के अन्तराल के पश्चात उन्होंने लन्दन स्कूल आफ इकोनामिक्स एण्ड पोलिटिकल साइंस (1920-22) में पुनः दाखिला लिया।

1921 में लन्दन विश्वविद्यालय द्वारा भीमराव आंबेडकर को अर्थशास्त्र में एम. एससी. की डिग्री प्रदान की गई। एम. एससी. अर्थशास्त्र की उपाधि के लिये उन्होंने "प्रोविन्सिएल डिसेन्ट्रलाइजेशन आफ इम्पीरियएल फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया' शीर्षक पर शोध प्रबन्ध लिखा था। भीमराव ने अर्थशास्त्र विषय में अपना अध्ययन व शोध कार्य जारी रखा। उनके द्वारा "द प्राब्लम आफ द रूपीः इट्स ओरिजिन एण्ड इट्स साल्यूशन" विषय पर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध पर लन्दन विश्वविद्यालय ने उन्हें सन् 1923 में डी. एससी, की डिग्री प्रदान की। यह शोध प्रबन्ध पुस्तक के रूप में लन्दन से उसी वर्ष प्रकाशित भी हुआ। इस शोध प्रबंध में उन्होंने रुपये (मुद्रा) की समस्या का •विस्तार पूर्वक अध्ययन किया और यह दर्शाया कि रुपये की समस्या और मूल्य वृद्धि रुपये की आन्तरिक क्रय शक्ति से घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है न कि रुपये के विनिमय मूल्य से जैसा कि सामान्यतया सोचा जाता है।[6]

ड,. आंबेडकर का आर्थिक **चिन्तन**

ड,. आंबेडकर का आर्थिक चिन्तन उनके समेकित सामाजिक चिन्तन का एक पक्ष है। यद्यपि ड,. आंबेडकर के चिन्तन की केन्द्रीय विषय वस्तु तो समाज व्यवस्था है तथापि सामाजिकेतर व्यवस्थाओं के अध्ययन उनके अध्ययन के महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि सानुकूल सामाजिकेतर व्यवस्थाओं के अभाव में जैसी समाज व्यवस्था वे चाहते थे, उसे साकार रूप दिया जाना सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक रूप से संभव नहल्ल था। आंबेडकर इस तथ्य से भली भांति परिचित थे। इसीलिए उनके चिन्तन में एक अटूट सातत्य सम्बन्ध तथा सानुकूलता एवं सापेक्षता परिलक्षित होती है। उनके सामाजिक एवं सामाजिकेतर चिन्तन को हम पृथक नही वरन् एक सम्पूर्णता में ही ठीक से समझ सकते हैं।

ड,. आंबेडकर का आर्थिक चिन्तन जीवन के यथार्थ के अनुभव से उदभूत है। यह कल्पना अथवा धाणमक या ईश्वरीय विश्वास पर आधारित नही है। उन्होंने परम्परात्मक सामाजिक- आर्थिक जीवन के यथार्थ तत्वों तथा स्मृतियों व धर्म शास्त्रों में प्रणीत हिन्दू धर्म के वर्ण-गत, जातिगत, आर्थिक आचार की सामाजिक न्याय, मानव अधिकार तथा व्यक्ति एवं समाज के सन्तुलित विकास की **दृष्टियों** से **तार्किक** परीक्षा की और इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि वर्ण, जाति एवं जजमानी द्वारा संचालित हिन्दू समाज का परम्परागत सामाजिक- आर्थिक ढांचा अवैज्ञानिक एवं अन्यायपूर्ण है। परिणामस्वरूप यदि हम व्यक्ति एवं समाज का सन्तुलित विकास चाहते है, यदि हम विकास में सबकी भागीदारी चाहते हैं और यदि हम प्रगति की दौड में दुनिया के दूसरे देशों के साथ चलना चाहते है तो इनका उच्छेद आवश्यक है। डॉ. आंबेडकर का आर्थिक चिन्तन यथार्थवादी तो है पर उददे्श्यपुर्ण भी है। डॉ. आंबेडकर आर्थिक एवं सामाजिक द्वष्टि से कमजोर वर्गों विशेष रूप से अनुसूचित जातियों, जो अपृश्यता सहित अनेक सामाजिक-आर्थिक निर्योग्यताओं से ग्रस्त थीं, के मौलिक अधिकारों की रक्षा तथा शैक्षिक एवं आर्थिक विकास के लिये विशेष प्रावधान किये जाने के पक्षधर थे।[7]

ड,. आंबेडकर के आणथक चिन्तन : दार्शनिक आधार

ड,. आंबेडकर दर्शन की व्यावहारिकता को अधिक महत्त्व देते थे। अनुभवातीत दर्शनों का परिणाम शून्य होता है। जैसा कि अधिकतर भारतीय दर्शनों का हुआ। वे जीवन पद्धति को प्रभावित तथा **परिवर्तित** नही कर पाते। वस्तुतः दर्शन को मूलतः कार्यात्मक नीतिशास्त्र होना चाहिए, न कि मात्र एक तत्त्व-मीमांसा। ड,. आंबेडकर ऐसे दार्शनिक **दृ**ष्टिकोण से बिलकुल सहमत नही थे, जिसका कोई सामाजिक प्रभाव न हो। समाज से सम्बन्धित हुए बिना कोई भी दर्शन धर्म नही बन सकता। यदि दर्शन धर्म अथवा आचरण से सम्बन्धित नही है, तो वह विशुद्ध कल्पना है। फिर ऐसा दर्शन सामाजिक जीवन से उद्भूत नही होता, अपितु शून्य से शून्य के लिए ही हो सकता है। इसलिए ड,. आंबेडकर ने स्पष्ट किया, "दर्शन शुद्धतः कोई सैद्धान्तिक विषय नही है। उसमें अनेक व्यावहारिक सामर्थ्य होते हैं। दर्शन की जड़ें जीवन की समस्याओं में निहित होती हैं और दर्शन जो कुछ भी सिद्धान्त प्रतिपादित करे, उन्हें समाज के पुनणनर्माण के साधनों के रूप में समाज की ओर ही मुड़ना चाहिए। जानना ही पर्याप्त नही होता। जो जानते हैं, उन्हें अनुपालन करने का प्रयास करना चाहिए।

दर्शन की उक्त धारणा ही ड,. आंबेडकर को बुद्ध के दर्शन एवं धर्म की ओर ले गई। बुद्ध के दर्शन का आधार धर्म है और धर्म शीलाचरण के अलावा कुछ नही है। बौद्ध दर्शन का सामाजिक प्रभाव तो सर्वत्र विदित है। उसने न केवल भारतीय भूमि में सामाजिक क्रान्ति को स्थापित किया, अपितु समूचे संसार में मानव मन और समाज पर अपनी अमिट छाप छोड़ी है। उसने करोड़ों स्त्री- पुरुषों के जीवन को नयी स्फूणत प्रदान की, उन्हें आलस्य-अज्ञान की चिरनिद्रा से जाग्रत किया और एक ऐसी शील सम्पदा को उसे सौंपा जो आज भी मानव जीवन को शान्त, शीलवान और समुन्नत बनाने में उपयोगी एवं प्रासंगिक है। ड,. आंबेडकर ने स्वयं कहा, "मैं बुद्धिज्म को पसंद करता हुं, क्योंकि वह तीन आदर्शों को संगठित रूप में बल देता है. जिसे अन्य कोई धर्म (रिलीजन) प्रोत्साहित नही करता। बुद्धिज्म प्रज्ञा (अंधविश्वास और अतिप्रेंतिवाद के विरुद्ध, सम्यक् समझ), करुणा (प्रेम), और समता (इक्व,लिटि) का उपदेश देता है। यही है वह जिसे आदमी एक शुभ एवं खुशहाल जीवन के लिए चाहता है। न तो ईश्वर, न ही आत्मा, समाज को बचा सकती है।[8] ड,. आंबेडकर के आर्थिक चिन्तन के दार्शनिक आधार इसप्रकार है-

आर्थिक चिन्तन का मुख्य ध्येय पीड़ित-शोषित मानता का उत्थान

ड,. आंबेडकर के समस्त क्रिया-कलापों के मूल में नैतिक चिन्तन और शीलाचरण मिलता है। यही कारण है कि आधारभूत मानववादी नैतिक मूल्य उनके आर्थिक विचारों को प्रभावित करते हैं। अपने आर्थिक विचारों में ड,. आंबेडकर सर्वथा पद्दलितों की दयनीय दशाओं से प्रभावित थे। उनकी **दृ**ष्टि में मनुष्य ही सर्वोपरि है, विचारणीय तत्त्व है, किन्तु मनुष्य का वह रूप नहल्

जिसे हम प्लेटो आदि के चिन्तन में पाते हैं। ड,. आंबेडकर ने तो पद्दलितों, अछूतों, शूद्रों, नीचों तथा कमजोरों के प्रतिरूप में आदमी को देखा। उनके दर्शन का मनुष्य यथार्थ है, जो जीवित तो है, पर समाज की दुर्दशाओं और यातनाओं का शिकार है। उन्होंने उस मनुष्य को तड़पते-बिलखते देखा, जिसकी आवाज तथाकथित उच्च लोगों को अपवित्र बना देती थी, जिसका देखा जाना पाप और छूआ जाना महापाप समझा जाता था। स्वयं ड,. आंबेडकर भी इन्हल जैसे मनुष्यों में से एक थे, हालांकि वह पढ़-लिखकर, सुशिक्षित होकर, एक महान् योद्धा उद्धारक बन गये। फिर भी चूंकि वह इनके बीच जन्मे, बड़े हुए और संग में यातनाएं सहल, जीवन पर्यन्त उनका साथ नही छोड़ा। ऐसा ही भूखा-नंगा, निरक्षर-निर्धन, शूद्र-अछूत आदमी उनके दर्शन का केन्द्रबिन्दु है। अतः यह भलीभांति समझा जा सकता है कि ड,. आंबेडकर के आर्थिक विचारों में इस पददलित आदमी की सीमाओं को नही लांघ सकते। उन्होंने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे ही आदमियों का ध्यान रखा था। इसलिए उनके आर्थिक चिन्तन का मुख्य बिन्दु इन पीड़ित-शोषित आदमियों का उत्थान तथा कल्याण करना ही था।

भौतिक सम्पन्नता और आध्यात्मिक उन्नति के मध्य संतुलन के पक्षधर

मानव जीवन में निश्चय ही आर्थिक व्यवस्था का महत्त्व है। मानव इतिहास के किसी अन्य युग से **कहीं** अधिक आजकल आर्थिक प्रभाव हावी है। वर्तमान में हमारी अधिकांश गतिविधियां अर्थ-विचार एवं धन प्राप्ति से संचालित है। हम ऐसे युग/वातावरण में पहुंच चुके हैं, जहां आर्थिक शक्तियां एवं आर्थिक उपलब्धियां मन को आतंकित करती हैं। वैसे ड,. आंबेडकर नही तत्वों के मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण माना, पर वे सब कुछ नही हैं, क्योंकि कुछ अन्य तत्व भी हैं, जो आर्थिक तत्त्वों से **कहीं** अधिक उपयोगी एवं वांछनीय हैं। ड,. आंबेडकर की मान्यता थी कि मानव समाज के निर्माण में दो प्रधान अभिकरण रहे हैं, धर्म और आर्थिक व्यवस्था। लेकिन आज की विषम परिस्थितियों में धाणमक आदर्श कम और तत्त्व अधिक हावी हैं। आर्थिक दबाव के कारण ही, आज भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। परम्परागत अन्यायपूर्ण आर्थिक ढांचा प्राय ढहने लगा है। इस प्रक्रिया में, ड,. आंबेडकर जैसे विचारकों का रचनात्मक योगदान रहा है। वर्तमान स्थिति में, हमारी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उनके आर्थिक विचार अनुपयोगी या अप्रासंगिक कतई नहल हैं, भले ही उनकी अभिव्यक्ति दशकों पूर्व हुई थी। उनके सिद्धान्त हमारे लिए मार्ग-दर्शक का काम कर सकते हैं। बशर्ते कि हम उन्हें गहराई से समझकर अमल में लाने का प्रयास करें।[9]

ड,. आंबेडकर अपने आर्थिक चिन्तन में अतिवादी नही थे। वह न तो घोर पूंजीवाद के समर्थक थे, और न ही कठोर समाजवाद के पक्ष में थे। वह मूलतः बुद्ध के अनुयायी होने के नाते मध्यम मागर्ॅ थे और चाहते थे कि आदमी स्वयं अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का प्रयास करे, न कि भाग्य तथा दैविक ंपा के सहारे बैठा रहे। इस प्रकार ड,. आंबेडकर अपने दार्शनिक **दृ**ष्टिकोण के अनुरूप, मानव जीवन में भौतिक सम्पन्नता और आध्यात्मिक उन्नति के बीच संतुलन के पक्षधर थे। अतिवादी होना, उनके स्वभाव में नहीं था। वह सम्यक् समायोजन को अत्यधिक महत्व देते है।[10]

भौतिक उपलब्धियों की अपेक्षा मानव मूल्यों पर बल

ड,. आंबेडकर इस बात से परिचित थे कि पूर्व और पश्चिम की अर्थनीति में अन्तर है। वह स्वयं विदेशों में पढ़े-लिखे, घूमे-फिरे, किन्तु वहां की अनीत संरचना का लक्ष्य उन्हें भाया नही । वहां के जीवन का मूल उद्देश्य आवश्यकता की वृद्धि और उनको अधिकतम संतुष्टि है अर्थात् जितनी भौतिक आवश्यकता की पूणत होगी, उतना ही उच्च जीवन स्तर माना जायेगा। भौतिक वस्तुओं के लिए दौड़-धूप पश्चिमी जीवन की एक विशिष्टता है। लेकिन ड,. आंबेडकर और विद्याथर्ॅ जीवन में पश्चिमी चकाचौंध में कतई न फंसे और भारतीय जीवन-शैली को ही प्रमुखता दी। उन्होंने तो स्वयं आत्म-संयम, मितव्यता और नियंत्रित इच्छा का जीवन जीया। वर्तमान भारतीय समाज के धनाढ्य वर्ग पश्चिमी उपभोगतावाद की ओर बहुत ही आकणषत हो रहे हैं, जो एक चिन्ताजनक स्थिति का द्योतक है। डॉ. आंबेडकर ने बुद्ध-मार्ग को अपनाया, जिसमें न्यूनतम इच्छाओं पर आधारित

जीवन उत्कृष्ट माना गया है, सम्यक् आजीविका पर बल दिया गया है, और भौतिक उपलब्धियों की दौड़ की अपेक्षा, शीलाधारित मानव मूल्यों को सद्गुणी कहा गया है।

शास्त्रगत पवित्रता में विश्वास के स्थान पर मानव समस्याओं पर बल

ड,. आंबेडकर वह इन्सान थे, जिन्होंने करोड़ों पद्दलित तथा कमजोर लोगों का मार्ग निर्देशन किया, उन्हें सामाजिक विद्रोह करने के लिए आन्दोलित किया और उस परम्परावादी सामाजिक तथा आर्थिक ढांचे की नलव हिला दी, जिसमें सामान्य आदमी पिस रहा था, पंगु होकर घिसट रहा था। वस्तुतः ड,. आंबेडकर का उद्देश्य समाज के विशेष क्षेत्र का पुनर्गठन न होकर, मानव के समस्त अस्तित्व का पुनणनर्माण था। वह एक सुधारक ही नही थे, मात्र आलोचक या समीक्षक भी नही थे। अन्य सामाजिक क्रान्तिकारी विचारकों की भांति जीवन की समस्याओं के प्रति उनका भी एक विशिष्ट उपागम था। उन्होंने उसी को स्वीकार किया जो उनके विवेक तथा अनुभव को संतुष्ट कर सका। उनका शास्त्रगत प्रामाणिकता अथवा पवित्रता में कोई विश्वास नहल था। ड,. आंबेडकर ने समस्त मानव समस्याओं को मानव की दृष्टि से देखा और ऐसे सुझाव रखे, जो समयानुकूल सार्थक थे। उनकी अर्थ-नीति में भी मानववादी भाव अन्तर्निहित था। यही कारण है कि उनके आर्थिक विचार वर्तमान समस्याओं से जूझने की सामर्थ्य रखते हैं।[11]

ड,. आंबेडकर का आर्थिक दर्शन

ड,. अंबेडकर के बहुमुखी और अनुपम अर्थशास्त्रीय कार्य के पीछे उनका आर्थिक दर्शन है। उन्ही के शब्दों में कहा जाए तो उनके आर्थिक दर्शन का मूलमंत्र है 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'। ड,. आंबेडकर के आर्थिक दर्शन का आधार हैं, उनके सामाजिक, धाणमक और नैतिक विचार। उनके आर्थिक दर्शन का केंद्र ऋबदु है, समाज का शोषित और उत्पीडित वर्ग। यह दर्शन राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक दृष्टिकोणों की व्यापकता से स्वतंत्रता, समता तथा बंधुत्व-इन तीन सूत्रों का समर्थन करता है। ड,. आंबेडकर के दर्शन का मूल उद्देश्य जाति-पाति का विचार न करते हुए दीनहीन को आधार देते हुए सभी भारतवासियों को स्वतंत्रता, समता और न्याय उपलब्ध करवाना है। प्रज्ञा, शील और करुणा पर आधारित, जाति-भेद रहित, वर्ग रहित और लोकतांत्रिक समाज का निर्माण ड,. आंबेडकर के आर्थिक दर्शन का अंतिम लक्ष्य है।

ड,. आंबेडकर के आर्थिक विचारों की उपेक्षा करके भारतीय समाज ने उन पर तो अन्याय किया ही है, साथ ही अपनी भी असीम हानि कर ली है। ड,. आंबेडकर का आर्थिक दर्शन केवल कुछ विशिष्ट वर्गों के लिए नही बल्कि समूचे देश के हित के लिए था। उनको केवल दलितों का नेता मानना उनका अपमान करने जैसा तो है ही, साथ ही राष्ट्र के लिए भी दुर्भाग्य है। भारतीय समाज अब भी अपनी इस भूल को सुधार सकता है। इसके लिए इस असाधारण भारतीय अर्थविद् के आर्थिक विचारों का अध्ययन करना और उस पर तर्कसंगत चर्चा करना आवश्यक होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था पर ड,. आंबेडकर द्वारा किए गए लेखन और भाषणों से और जन अभियानों के माध्यम से किए गए उनके सृजनशील अर्थशास्त्रीय योगदान का देखते हुए यह मानने में कोई झिझक नही रहती कि वे भारत के सर्वश्रेष्ठ अर्थशास्त्रीय विद्वानों में से एक थे।[12]

ड,. आंबेडकर के आर्थिक दर्शन विविध पक्ष

ड,. आंबेडकर के आर्थिक दर्शन के विविध पक्षों की विवेचना इसप्रकार की जा सकती है-

जातिगत अर्थव्यवस्था का प्रतिरोध

स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान ड,. आंबेडकर ही एक ऐसे प्रबुद्ध नेता, विद्वान तथा सामाजिक स्थिति के व्याख्याकार थे, जिन्होंने उस समय की गति को पहचान कर कमजोर वर्गों अर्थात् करोड़ों पददलितों की दयनीय आणथक दशाओं की ओर ध्यान आकणषत किया था। ड,. आंबेडकर ही एक ऐसे विचारक थे, जिन्होंने जातिगत आर्थिक कुचक्रों, सामाजिक बेड़ियों और राजनीतिक उत्पीड़नों को भलीभांति समझकर, उन पर प्रभावशाली प्रहार किये। जातिगत अर्थव्यवस्था ने न केवल निर्धनता, निरक्षरता, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि को बढ़ावा दिया, अपितु करोड़ों शूद्र-अछूतों को भुखमरी, बीमारी, बेगार, बंधुआ श्रम, भिक्षावृत्ति, अपराध, चोरी, डकैती जैसी बुराइयों के घेरे में भी झोंक दिया। ऐसी आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति आज भी सर्वत्र दिखाई देती है।

जातिगत अर्थतंत्र मूलतः वर्ण व्यवस्था की ही व्युत्पत्ति है। ड,. आंबेडकर ने अपने ग्रंथ-हू वर द शूद्राज ?' में यह दावा किया है कि प्रारम्भ में वर्ण तीन ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य, ही थे, किन्तु क्षत्रियों के बीच परस्पर युद्धों और ब्राह्मणी चालों के कारण, शूद्र वर्ण भी स्थापित हो गया, जिसे वर्ण व्यवस्था में निम्न एवं हेय स्थान प्राप्त हुआ। इस प्रकार वर्ण चार, किन्तु जातियां अनेक हैं। अधिकांश जातियां वर्णाधारित है, जिनमें वही स्तरीय असमानता है, जो वर्ण-व्यवस्था में अन्तणनहित है। जातिगत व्यवस्था अनेक रूपों में व्यक्त होती है। जैसे ऊंच-नीच की भावना, छुआछुत का व्यवहार, पारस्परिक बहिष्कार, शादी-विवाहों अथवा खान-पान में अलगाव, आपसी घृणा एवं द्वेष-भाव, असमानता, शोषण, उत्पीड़न, दमन, निर्धनता, निरक्षरता, अज्ञानता और ब्राह्मणी प्रभुत्व। ड,. आंबेडकर ने अपने ग्रंथ-'एनिहिलेशन ऑफ कास्ट' में जातिगत व्यवस्था संलग्न वर्ण-व्यवस्था के सभी पक्षों की विशद विवेचना की है और उसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक एवं धाणमक इत्यादि सभी दृष्टियों से उसे हानिकारक बतलाया।[13]

ड,. आंबेडकर ने वर्ण-व्यवस्था अथवा जातिगत अर्थव्यवस्था के संदर्भ में केवल मनु-स्मृति को ही प्रामाणिक मानकर उसके आर्थिक अंशों की समीक्षा की है। व्यक्ति की सबसे बड़ी आवश्यकता आर्थिक सुरक्षा होती है, जिसके अभाव में वह अपने को छोटा महसूस करता है। ड,. आंबेडकर के अनुसार कोई व्यक्ति किसी भी व्यवसाय को, जिसका वह चुनाव कर सके, अपनाने के लिए स्वतंत्र हो सकता है... फिर भी यदि वह रोजगार की सुरक्षा से वंचित किया जाता है, तो वह मानसिक तथा शारीरिक दासता का शिकार हो जाता है। जो स्वतंत्रता के मूल-सार का प्रतिरोध है... आने वाले कल का निरंतर भय, उसके अवरोधक संकट के डरावने भाव से, उसके लिए आनन्द एवं सौन्दर्य की उपयुक्त खोज नदारद हो जाती है. जिससे प्रदणशत होता है कि आर्थिक सुरक्षा के बिना स्वतंत्रता जीने योग्य नही है। निश्चय ही ऐसे स्वतंत्र होने में कोई संगति नही है कि व्यक्ति स्वतंत्र हो और अपनी पसंद का कोई व्यवसाय भी नहल्ल अपना सके और इस प्रकार आर्थिक सुरक्षा से वंचित जीवन-यापन करता रहे। ऐसी स्थिति में आदमी सदैव चिन्ताग्रस्त रहेगा। जातिगत आर्थिक व्यवस्था में व्यक्ति आर्थिक असुरक्षा का जीवन जीने के लिए मजबुर होता है।

ड,. आंबेडकर ने आर्थिक सुरक्षा के संदर्भ में जातिगत अर्थव्यवस्था में मुख्यतः तीन बातों को रेखांकित किया। जो इसप्रकार है-

(1) **व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता का निषेध**

जातिगत अर्थव्यवस्था में व्यवसाय की स्वतंत्रता का निषेध है। मनु-स्मृति विधान में प्रत्येक व्यक्ति का उसके जन्म से पहले ही व्यवसाय पूर्व निर्धारित होता है और उसे व्यवसाय के चुनाव की अनुमति नही है, साथ ही, व्यवसाय (आजीविका पूर्व निर्धारित होने के कारण, उसका व्यक्ति की सामर्थ्य तथा झुकाव से कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

(2) **शूद्र के जीवन का लक्ष्य उच्च तीनों वर्णों की सेवा करना**

जातिगत अर्थव्यवस्था में अधिकतर स्त्री-पुरुष अन्य लोगों द्वारा चुने गये लक्ष्यों तक ही काम करते हैं। मनु-स्मृति शूद्र के लिए यह निश्चित करती है कि वह उच्च तीनों वर्णों की सेवा करने हेतु पैदा हुआ है। वह उपदेश देती है कि इसी को उसे अपना आदर्श मानना चाहिए। मनु-स्मृति द्वारा निर्धारित कुछ आर्थिक नियम इस प्रकार हैं: ''यदि कोई शूद्र (ब्राह्मणों की सेवा द्वारा जीवित रहने में असमर्थ हो) आजीविका ढूंढ़ता है, वह क्षत्रियों की सेवा कर सकता है। अथवा

वह किसी धनाढ्य वैश्य की सेवा करके अपना जीवन यापन कर सकता है किन्तु शुद्र को ब्राह्मणों की ही सेवा करनी है।

ड,. आंबेडकर के अनुसार मनु-स्मृति उक्त आदर्श को शुद्र द्वारा क्रियान्वित करने के विषय तक ही सीमित नही रहती। वह आगे बढ़कर यह आदेश देती है कि शुद्र अपने निर्धारित कार्य से नही हटे, उसकी उपेक्षा न करे। मनु-स्मृति ने राजा को जो अनेक अधिकार सौंप, उनमें यह भी एक अधिकार अथवा उत्तरदायित्व है कि वह यह सुनिश्चित करे कि सभी जातियां, शुद्र भी अपना-अपना निर्धारित कार्य करें। राजा को व्यापारी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को यह आदेश देना चाहिए कि वह व्यापार करे, रुपया उधार दे, या ंषि और पशु-पालन का व्यवसाय करे और शूद्र वर्ग का प्रत्येक व्यक्ति, द्विज वर्णों को सेवा में लीन रहे। राजा को बहुत ही सजग रहना है कि व्यापारी और मिस्त्री अपने-अपने निर्धारित कर्तव्यों का भलीभांति अनुपालन करें, क्योंकि, जब ऐसे लोग अपने कर्तव्य नही करते तो वे इस संसार को उलझन में डाल देते हैं।[14]

ड,. आंबेडकर ने कहा कि "उक्त नियमों का द्विक महत्त्व है, आध्यात्मिक और आर्थिक । आध्यात्मिक अर्थ में, वे दासता के पवित्र सिद्धान्त का निर्माण करते हैं। यह बात उन लोगों को भले ही बिल्कुल स्पष्ट न हो, जो दासता को उसके मात्र विधिक बाह्य रूप में जानते हैं, न कि उसके आन्तरिक अर्थ के संदर्भ में। उसके आन्तरिक अर्थ के संदर्भ में प्लेटो ने कहा कि एक दास वह है, जो किसी अन्य द्वारा निर्धारित उन उद्देश्यों को स्वीकार करता है, जो उसके आचरण पर नियन्त्रण रखते हैं। इस अर्थ में कोई दास स्वयं में साध्य नहल्ल है। वह केवल एक साधन मात्र है। उन साध्यों की सम्पूणत में जिनका संकल्प अन्य लोगों ने किया है। इस प्रकार समझने पर एक शूद्र दास है। अपने आर्थिक महत्त्व में, ये नियम शूद्रों की आर्थिक स्वतंत्रता पर अंकुश लगाते हैं। एक शूद्र को जैसा कि मनु कहता है, सेवा ही करनी चाहिए। इसमें शिकायत करने की कोई अधिक गुंजाइश नही है। फिर भी दोष इस बात में है कि ये नियम उसे दूसरों की सेवा ही के लिए बाध्य करते हैं। उसे अपनी सेवा नही करनी है, जिसका अर्थ है कि उसे आर्थिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष नहल्ल करना चाहिए। उसे सदैव, आर्थिक दृष्टि से, अन्य लोगों पर आश्रित रहना चाहिए। मनु-स्मृति में इस बात को भी पुष्टि की गई कि "ईश्वर ने केवल एक ही व्यवसाय शुद्र के लिए निर्धारित किया कि वह अन्य तीन जातियों की सेवा ही करता रहे।"[15]

(3) शूद्र को धन संग्रहण का अधिकार नही

तृतीय मुख्य बात, जिसे ड,. आंबेडकर ने जातिगत अर्थव्यवस्था में पाया, यह है कि शूद्र धन इकट्ठा नही कर सकता। कोई गुंजाइश नही छोड़ी गई कि वह धन-सम्पत्ति को भावी संकट का सामना करने के लिए एकत्रित कर सके। मनु-स्मृति के अनुसार अन्य तीनों जातियों के लोगों द्वारा किसी शूद्र को उसके काम/व्यवसाय के प्रतिफल के रूप में "उन्हें अपनी स्वयं की पारिवारिक सम्पत्ति में से उसे (शूद्र), उसकी योग्यता, उसका परिश्रम, और उनकी संख्या के अनुकूल जिनका वह भरण-पोषण करने के लिए बाध्य है, एक उपयुक्त भत्ता दे देना चाहिए। अपनी खाद्य सामग्री के बचे-कुचे टुकड़ों को उसे (शूद्र) देना चाहिए साथ ही, अपने पुराने कपड़े, अपने अनाज की भूसी, और अपना पुराना घरेलू फनऍचर भी। मनु-स्मृति में वणणत यही मजदूरी सम्बन्धी कानून है।

ड,. आंबेडकर ने कहा कि "यह तो एक न्यूनतम मजदूरी कानून भी नही है। यह अधिकतम मजदूरी कानून है। मनु-स्मृति ने निरपेक्षतः शुद्र द्वारा धन-सम्पत्ति इकट्ठा करने पर प्रतिबंध लगा गया। उसमें यह आदेश दिया गया है कि कोई शूद्र धन इकट्ठा नही कर सकता और ना ही आर्थिक सुरक्षा प्राप्त कर सकता था। मनु-स्मृति के अनुसार "किसी भी शूद्र को धन इकट्ठा नहल्ल करना चाहिए, भले ही वह ऐसा कर सकने में सक्षम हो, क्योंकि वह शूद्र, जिसने धन इकट्ठा कर लिया है, ब्राह्मणों को कष्ट देता है। स्पष्टतः ड,. आंबेडकर की दृष्टि से, जातिगत अर्थव्यवस्था में व्यवसाय का चुनाव सम्भव नही है, उसमें न कोई आर्थिक स्वतंत्रता है, और न ही कोई आर्थिक सुरक्षा। इस प्रकार भारतीय समाज, विशेषकर हिन्दू समुदाय में, शूद्र, अछूतों के साथ आर्थिक अन्याय आज भी विद्यमान है। प्रायः देखा गया है कि

नीच जाति के लोग अपनी पसंद का व्यवसाय नही चुन सकते। उन्हें अधिकतर, जैसा कि भंगी-चमार जातियों के सम्बन्ध में पाया जाता है। अपने पैतृक व्यवसाय ही करने पड़ते हैं। भले वे उन्हें पसंद न हो। उन्हें आर्थिक स्वतंत्रता से वंचित किया जाता है। वस्तुतः जातिगत आर्थिक ढांचा सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए हानिकारक है। निम्न जातियों के लिए तो वह एक अभिशाप बन चुका है। इसलिए ड,. आंबेडकर ने भारतीय परम्परावादी तथा जातियों पर आधारित अर्थव्यवस्था का पूर्णतः प्रतिरोध किया।[16]

जातिगत अर्थव्यवस्था में न केवल आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक सुरक्षा का अभाव है, अपितु उसमें अनेक व्यवसायें को निंष्ट माना गया है। उन्हें उच्च जातियों के स्त्री-पुरुष करने में हिचकते हैं और जो स्त्री-पुरुष करते हैं, उन्हें नीच-अधम समझा जाता है। फलतः उनसे घृणा की जाती है। उनके लड़के-लड़कियों को स्कूल आदि में हेय दृष्टि से देखा जाता है। इसके अतिरिक्त जातिगत आणथक ढांचा श्रमिकों को कठोर जातियों में विभाजित करके, श्रमिकों के बीच स्तरीय असमानता, ऊंच-नीच, की भावनाएं पैदा करता है। जैसा कि स्वयं ड,. आंबेडकर ने अपने ग्रंथ 'एनिहिलेशन अ,फ कास्ट' में विस्तारपूर्वक विश्लेषित किया है। अन्य शब्दों में, जातिगत अर्थव्यवस्था में श्रम की गतिशीलता का अभाव, कार्य-कुशलता की कमी, वैयक्तिक सम्प्रेरणा की उपेक्षा, सामाजिक विषमता, कुछेक व्यवसायें के प्रति घृणा-भाव, श्रम की प्रतिष्ठा का अभाव, पूंजी की गतिहीनता आदि कुछ ऐसी बातें हैं, जिन्हें ड,. आंबेडकर ने आधुनिक समाजवादी समाज की धारणा के विपरीत पाया। अतः उसके प्रति उनका प्रतिरोध स्वाभाविक था। जो आज भी उतना ही प्रासंगिक है, जितना कि पांच दशक पूर्व जब वह सम्पूर्ण जाति व्यवस्था के विरोध में उठ खड़े हुए थे।

सरकार द्वारा ही सामाजिक सुधार एवं आर्थिक विकास के उत्तरदायित्व का उचित संपादन

आज भी कुछ ऐसे कट्टरपंथी तत्त्व हैं जो वर्ण-व्यवस्था की वैदिक धारणा की आड़ में जातिप्रथा में वैश्यों की आर्थिक भूमिका की सराहना करते हैं और देश की गरीबी मिटाने की जिम्मेदारी वैश्यों को ही सौंपने की वकालत करते हैं। क्या यह विचार मात्र कल्पना नही है ? वर्णाधारित अर्थव्यवस्था ने देश के आम आदमी का कभी भला नही किया। उसमें केवल वैश्य तथा ब्राह्मण वर्णों का ही आर्थिक कल्याण हुआ, क्योंकि बहुसंख्यक शूद्र अछूतों पर अनेक प्रकार के आर्थिक तथा सामाजिक प्रतिबंध लगा दिये गये थे। वर्तमान अर्थव्यवस्था की जो मूलभूत समस्याएं जैसे क्या उत्पादन किया जाए, उत्पादन कैसे किया जाए, उत्पादन किसके लिए किया जाए तथा उपभोक्ता को कौनसी सुविधाएं प्रदान की जाएं, का क्षेत्र इतना विस्तृत हो चुका है और इसका प्रभाव समाज के प्रत्येक वर्ग विशेषकर निर्धन पर इतनी गहराई से पड़ता है कि इसकी जिम्मेदारी किसी वर्ण, जाति या वर्ग विशेष को सौंपना भारत जैसे पिछड़े देश में नागरिकों के लिए ही नहल, बल्कि देश के लिए भी घातक सिद्ध होगा। इसी दृष्टि से, ड,. आंबेडकर जैसे आर्थिक विचारकों ने यह माना कि सरकार ही वह सार्वभौमिक संस्था हो सकती है। जो आर्थिक सुधार एवं खुशहाली के उत्तरदायित्व का ठीक ढंग से संपादन करे। स्वयं ड,. आंबेडकर ने बहुत पहले ही यह स्पष्ट कर दिया था कि अर्थव्यवस्था में कई कार्य ऐसे होते हैं। जो सरकार द्वारा ही संपादित किये जा सकते हैं।

सरकार गरीबी उन्मूलन के लिए कई योजनाएं तथा कार्यक्रम चलाती हैं, जिनके बदले में कोई आय नही होती, बल्कि सरकार को उन पर करोड़ों रुपया व्यय करना पड़ता है। क्या आज का वैश्य वर्ण या समुदाय देश की गरीबी उन्मूलन जैसे अनुत्पादक किन्तु मानवीय कार्यक्रमों में अपनी धन-सम्पत्ति खर्च कर सकता है ? क्या वैश्य लोग निहित स्वार्थो के बिना समाज के आर्थिक विकास में भागीदार बन सकते हैं? कतई नही । यदि वे ऐसा करते तो भारत की धन-सम्पत्ति मात्र 20 प्रतिशत लोगों के घेरे में नही होती। ये वैश्य लोग ही हैं जिनके पास अपार धन-सम्पत्ति है। लेकिन उनमें लोभ-लालच की प्रवृत्तियां इतनी गहरी हैं कि वे स्वयं ही सभी लाभों को हड़प करने की टोह में रहते हैं। देश के इन्ही 20 प्रतिशत धनाढयों ने काले धन की समानान्तर अर्थव्यवस्था चला रखी है और अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए ये बहुत से श्रमिकों व गरीबों की रोटी रोजी छीनने में हिचकते नही । फिर भी भला इस वैश्य समाज अथवा मनुवादी अर्थव्यवस्था से किस प्रकार गरीब वर्ग के स्त्री-पुरुषों के हितों को सुरक्षा हो सकती है? क्या वैश्य लोगों से अनुत्पादक विकास कार्यों के संपादन की उम्मीद की जा सकती है ? कतई नही

। उल्टे ये वैश्य (धनाढ्य) लोग सदावर्त तथा परमार्थ निस्वार्थ एवं समाजोपयोगी कार्यों की आड़ में अनैतिक, अनुचित तथा गैर-कानूनी कार्यों को करने लगते हैं ताकि अधिकाधिक आर्थिक लाभ पहुंचे। अतः ड,. आंबेडकर की दृष्टि से, जैसा कि उन्होंने जातिगत अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन किया है, वर्तमान अर्थव्यवस्था को वैश्यों तथा ब्राह्मणों के हाथों में सौंपने की जरूरत नही है, बल्कि आम जनता को तथा जागरूक करते हुए सरकार को उसकी जिम्मेदारियों के निर्वहन के लिए तैयार करने की है ताकि उनका आर्थिक विकास हो।[17] निश्चय ही ड,. आंबेडकर ने समस्त आर्थिक क्रियाओं को जाति एवं धर्म के दायरों से बाहर निकालने पर बल दिया। यदि हम उनकी दोनों ंतियों 'भारत में जातिप्रथा' एवं 'जातिप्रथा का उन्मूलन' का गहराई से अध्ययन करे तो हम पायेंगे कि उन्होंने जातियों पर आधारित सम्पूर्ण समाज के विनाश की आवश्यकता बतलाई, क्योंकि ऐसी समाज व्यवस्था ने मानव गरिमा, स्वतंत्रता एवं समानता का गला घोंटा है। करोड़ों शुद्र अछूतों को विकट निर्धनता, दरिद्रता, निरक्षरता, हीनता आदि की गहरी खाइयों में दबा रखा है। अधिक विस्तार में न जाकर यहां कुछ ऐसे निष्कर्ष अवतरित हैं, जिनका सीधा सम्बन्ध ड,. आंबेडकर के आणथक विचारों से हैः-

1. किसी भी आर्थिक ढांचे में व्यवसायें का चुनाव करने की पूर्ण स्वतंत्रता उसकी समुन्नति के लिए परमावश्यक है, आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में पेशेगत विकल्पों का कोई महत्त्व नही रह जाता।

2. आदमी की अनेक भौतिक आवश्यकताएं हैं, जिनकी सम्पूणत नियमित मजदूरी या वेतन से ही सम्भव हैः किसी भी आर्थिक व्यवस्था में आर्थिक सुरक्षा एक अनिवार्य अंग है, जिसे सामाजिक सुरक्षा भी कहा जाता है।

3. आर्थिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक सुरक्षा तभी सम्भव है, जब प्रत्येक नागरिक को रोजगार एवं व्यवसायके समान अवसर उपलब्ध हों, जिनसे वे अपनी सामर्थ्य और पहल का सदुपयोग कर सकें।

4. आर्थिक कार्य-कुशलता के लिए पूंजी एवं श्रम दोनों की गतिशीलता तथा वांछनीय सामाजिक परिवर्तन होने चाहिए। कठोर नियमों के स्थान पर समायोजित एवं लचीले नियम अर्थ-चक्र को बल प्रदान करते हैं।

5. किसी भी आर्थिक ढांचे, उसको प्रक्रिया एवं सुधारों में अत्यधिक कमजोर वर्गों के हितों एवं अधिकारों का पूर्णतः ध्यान रखा जाये ताकि राष्ट्रीय आय और धन-सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण सम्भव हो सके।

निष्कर्ष

किसी देश में लोकतान्त्रिक ढंग से होने वाले समग्र विकास में उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पक्षों और परिणामों पर गम्भीरतापूर्वक विचार-विमर्श होना स्वस्थ परम्पराओं का द्योतक है। अन्त में यह कहना उचित होगा कि वर्ण अथवा जाति पर आधारित कोई भी अर्थव्यवस्था, ड,. आंबेडकर की दृष्टि से, आर्थिक एवं सामाजिक न्याय की प्रतिरोधी है। उनकी मान्यता थी कि सम्पत्ति और उत्पादन के असमान वितरण के कारण ही भारतीय समाज में विकट निर्धनता और व्यापक दरिद्रता सदियों से निरन्तर चली आ रही है। कुछ लोगों, विशेषकर वैश्यों के आणथक प्रभुता के ऋसहासन पर बैठने के कारण ही जातिगत क्रूरताओं तथा शोषणवादी प्रवृत्तियों में वृद्धि हुई, और कालान्तर में, इनसे ही बेगार, बंधुआ मजदूरी तथा बालश्रम जैसी आर्थिक बुराइयां उत्पन्न हुई। इन्हल्ल का प्रतिरोध ड,. आंबेडकर ने किया था जो पूर्णतः न्यायसंगत है। इनको समाप्त किये बिना भारत में वह आर्थिक लोकतंत्र' स्थापित नहीं हो पायेगा।[18]

ड,. आंबेडकर ने अपने आर्थिक तंत्र में मूलतः व्यापार, बैंक्रृकग, रुपया, ंषि, में मद्यनिषेध, जातिगत अर्थ नीति, औद्योगीकरण, मजदूरी, श्रमिक कल्याण राज्य समाजवाद, भूमि सुधार, राजस्व आदि पर विचार व्यक्त किये। उन्होंने इस बात पर अधिक ध्यान दिया कि इन विषयों की प्रक्रियाओं में समूची भारतीय अर्थव्यवस्था पर किन-किन तत्त्वों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने यह भी विचार किया कि आर्थिक क्षेत्र में सम्भावित परिवर्तनों का समाज के पद्दलित एवं कमजोर वर्गों पर कौन से प्रभाव पहेंगे। ड,. आंबेडकर

अपने आर्थिक चिन्तन में अतिवादी नही थे। वह न तो घोर पूंजीवाद के समर्थक थे, और न ही कठोर समाजवाद के पक्ष में थे। वह मूलतः बुद्ध के अनुयायी होने के नाते मध्यम मागऍ थे, और चाहते थे कि आदमी स्वयं अपनी आर्थिक समस्याओं का समाधान ढूंढ़ने का प्रयास करे, न कि भाग्य तथा दैविक ंपा के सहारे बैठा रहे। इस प्रकार ड,. आंबेडकर अपने दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुरूप, मानव जीवन में भौतिक सम्पन्नता और आध्यात्मिक उन्नति के बीच संतुलन के पक्षधर थे। अतिवादी होना, उनके स्वभाव में नहीं था। वह सम्यक् समायोजन को अत्यधिक महत्व देते है।

20वल सदी के शुरुआत में विश्व के लगभग सभी प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों ने ड,. अंबेडकर के अर्थशास्त्र विषय की समझ तथा उनके योगदान को सराहा और उनके शोध पर महत्वपूर्ण टिप्पणी भी की। हाल ही में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री आमर्त्य सेन ने कहा "ड,. अंबेडकर अर्थशास्त्र के विषय में मेरे पिता हैं". सन 1917 में पीएचडी. शोध पूरा कर पाए, उनकी एमए. की थीसिस का विषय 'प्राचीन भारतीय वाणिज्य' था, जो कि प्राचीन भारतीय वाणिज्य के प्रति उनकी समझ को दर्शाता है। इस थीसिस में उन्होंने प्राचीन भारतीय वाणिज्य की समस्याओं को रखा तथा उनके संभावित कारगर समाधान भी बताए। बाबा साहब आंबेडकर की आर्थिक समस्याओं के प्रति व्यवहारिक सोच थी। वे मानते थे कि भारत के पिछड़ेपन का मुख्य कारण भूमि-व्यवस्था के बदलाव में देरी है। इसका समाधान लोकतांत्रिक समाजवाद है, जिससे आर्थिक कार्यक्षमता एवं उत्पादकता में वृद्धि होगी तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था का कायापलट संभव होगा। आर्थिक समस्याओं के प्रति उनके दृष्टिकोण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि वे अहस्तक्षेप (स्पेम्र.पितम) तथा वैज्ञानिक समाजवाद (Scientific Socialism) की ऋनदा करते थे। ड,. अंबेडकर ने आर्थिक एवं सामाजिक असमानता पैदा करने वाले पूंजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करने की पुरजोर वकालत की। उनका यह अविस्मरणीय योगदान उनकी सशक्त सामाजिक- आर्थिक संवेदना और सामाजिक- आर्थिक गहन वैचारिकी का परिणाम हैं।

संदर्भ सूची

1- ड, नरेंद्र जाधव, संपादक ड, आंबेडकर आर्थिक विचार एवं दर्शन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 142-143
2- ड,. नरेंद्र जाधव, संपादक ड, आंबेडकर आर्थिक विचार एवं दर्शन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 23
3- डॉ. प्रकाश हिन्दुस्तानी, आंबेडकर संविधान तक ही सीमित नहीं, अर्थशास्त्र में योगदान क्यों भूले https://www.satyahindi.com/opinion/ Last updated on : 03 Jan, 2020
4- डॉ. प्रकाश हिन्दुस्तानी, नोट-3
5- ओमप्रकाश कश्यप, ड,. आंबेडकर का आर्थिक ऋचतन, आखरमाला समय से संवाद, 6 दिसम्बर, 2016.
6- प्रों. रामगोपाल सिंह, डॉ. आंबेडकर : समाज वैज्ञानिक, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1994, पृ. 78-79
7- प्रों. रामगोपाल सिंह, नोट-8, पृ. 79
8- डी. आर. जाटव, ड,. अंबेडकर के आणथक विचार, समता साहित्य सदन, जयपुर, 2015, पृ. 2-3
9- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 3-4
10- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 5
11- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 4-5
12- ड, नरेंद्र जाधव, नोट-1, पृ. 148 -149
13- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 9-10
14- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 10-11
15- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 11-12

16- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 12-13
17- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 13-14
18- डी. आर. जाटव, नोट-23, पृ. 14-15